



आदिवासी महिला नेतृत्व और भारतीय जनआंदोलन: ऐतिहासिक एवं वैचारिक परिप्रेक्ष्य

**Ritu Hunka**

Research Scholar, Department of History, Malwanchal University, Indore

**Dr. Rathod Duryodhan Devidas**

Supervisor, Department of History, Malwanchal University, Indore

**सार**

प्रस्तुत शोध-पत्र भारतीय जनजातीय आंदोलनों में आदिवासी महिलाओं की ऐतिहासिक, सामाजिक एवं वैचारिक भूमिका का गहन विश्लेषण करता है। औपनिवेशिक काल से लेकर वर्तमान समय तक आदिवासी महिलाओं ने जल, जंगल और जमीन की रक्षा, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक पहचान और समुदाय की स्वायत्तता के लिए अनवरत संघर्ष किया है। यह शोध-पत्र संधाल हूल, मुंडा उलगुलान, भील आंदोलन जैसे ऐतिहासिक विद्रोहों में महिलाओं की सहभागिता से लेकर नर्मदा बचाओ आंदोलन, वनाधिकार आंदोलन तथा खनन विरोधी संघर्षों में उनकी अग्रणी भूमिका तक के विविध आयामों को रेखांकित करता है। नारीवादी, उपनिवेशोत्तर और सबाल्टर्न दृष्टिकोणों के माध्यम से यह विश्लेषण स्पष्ट करता है कि आदिवासी महिलाओं का संघर्ष केवल लैंगिक अधिकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामुदायिक सशक्तिकरण, पर्यावरणीय न्याय और वैकल्पिक विकास दृष्टि से भी जुड़ा हुआ है।

**मुख्य शब्द:** आदिवासी महिलाएँ, जनजातीय आंदोलन, जल-जंगल-जमीन, वनाधिकार, सामाजिक न्याय, सबाल्टर्न विमर्श, जनजातीय अस्मिता

## **1. प्रस्तावना (Introduction)**

भारत की विविधतापूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में जनजातीय समुदायों का स्थान विशिष्ट और महत्वपूर्ण रहा है। इन समुदायों ने सदियों से अपनी परंपराओं, भाषाओं, लोक ज्ञान और प्राकृतिक संसाधनों के साथ गहरे सामंजस्य में जीवन व्यतीत किया है। किंतु अठारहवीं शताब्दी में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आगमन के साथ इस जीवन-पद्धति पर गहरा संकट आया। भूमि अधिग्रहण, वन कानूनों का कठोर प्रवर्तन, कर व्यवस्था और बाहरी शोषणकारी शक्तियों ने जनजातीय समुदायों को उनके पारंपरिक संसाधनों से वंचित करना प्रारंभ किया।

इन विपरीत परिस्थितियों में जनजातीय समुदायों ने अपने अस्तित्व, अधिकारों और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा के लिए अनेक आंदोलनों का सूत्रपात किया। इन आंदोलनों में आदिवासी महिलाओं की भूमिका केंद्रीय रही, यद्यपि उन्हें इतिहास के पृष्ठों में प्रायः उचित स्थान नहीं मिला। वे न केवल संघर्षों में भागीदार रहीं, बल्कि नेतृत्व, संगठन और जनजागरण की प्रमुख वाहक भी बनीं। उनकी यह भूमिका औपनिवेशिक काल से लेकर स्वतंत्रता के बाद के दौर तक निरंतर बनी रही और आज भी पर्यावरण, वनाधिकार तथा विस्थापन-विरोधी आंदोलनों में दिखाई देती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र इसी विषय का ऐतिहासिक और वैचारिक विश्लेषण करने का प्रयास करता है। इसमें औपनिवेशिक कालीन प्रमुख जनजातीय विद्रोहों, स्वतंत्रता पश्चात के आंदोलनों, वनाधिकार संघर्षों तथा पर्यावरणीय आंदोलनों में आदिवासी महिलाओं की भूमिका का क्रमबद्ध अध्ययन किया गया है। साथ ही, नारीवादी, उपनिवेशोत्तर और सबाल्टर्न दृष्टिकोणों के आलोक में इन आंदोलनों के वैचारिक आधार की भी पड़ताल की गई है।

## 2. भारत में जनजातीय आंदोलनों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में जनजातीय आंदोलनों का इतिहास औपनिवेशिक काल से लेकर वर्तमान समय तक संघर्ष, प्रतिरोध और सामाजिक न्याय की निरंतर प्रक्रिया का द्योतक रहा है। जनजातीय समुदायों ने अपने जल, जंगल और जमीन पर पारंपरिक अधिकारों की रक्षा के लिए समय-समय पर विभिन्न आंदोलन किए। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन द्वारा लागू की गई भूमि नीतियों, वन कानूनों, कर व्यवस्था तथा बाहरी शोषणकारी शक्तियों के विरुद्ध अनेक जनजातीय विद्रोह हुए।

इन आंदोलनों का उद्देश्य केवल आर्थिक शोषण का विरोध करना नहीं था, बल्कि अपनी सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक स्वायत्तता और पारंपरिक जीवन-पद्धति की रक्षा करना भी था। ब्रिटिश प्रशासन ने पारंपरिक सामुदायिक भूमि व्यवस्था को कमजोर कर जनजातीय समुदायों को उनकी आजीविका के प्रमुख स्रोतों से वंचित करना प्रारंभ किया। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक असंतोष उत्पन्न हुआ और अनेक विद्रोह सामने आए।

### 2.1 संधाल हूल (1855–56)

संधाल विद्रोह, जिसे संधाल हूल के नाम से भी जाना जाता है, ब्रिटिश शासन, जमींदारों और साहूकारों के शोषण के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण जनजातीय आंदोलन था। सिद्धू, कान्हू, चाँद और भैरव मुर्मू के नेतृत्व में यह विद्रोह भड़का, जिसमें हजारों संधालों ने ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी। संधाल समुदाय अपनी भूमि पर बढ़ते नियंत्रण, अत्यधिक करों और आर्थिक उत्पीड़न से असंतुष्ट था। इस विद्रोह में महिलाओं ने भी सक्रिय भागीदारी की — वे सूचना संप्रेषण, रसद व्यवस्था और नैतिक समर्थन की प्रमुख वाहक बनीं। यद्यपि इस आंदोलन को कठोर दमन द्वारा दबा दिया गया, फिर भी इसने जनजातीय अधिकारों और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष की एक सशक्त परंपरा स्थापित की।

### 2.2 मुंडा उलगुलान (1899–1900)

"उलगुलान" अर्थात् महान हलचल — बिरसा मुंडा के नेतृत्व में झारखंड क्षेत्र में संचालित यह आंदोलन ब्रिटिश शासन, जमींदारों और बाहरी शोषक शक्तियों के विरुद्ध था। बिरसा मुंडा ने सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जागरण का संदेश दिया तथा जनजातीय समुदाय को संगठित किया। इस आंदोलन का उद्देश्य भूमि अधिकारों की पुनर्स्थापना और स्वशासन की स्थापना था। मुंडा महिलाओं ने भी इस संघर्ष में उल्लेखनीय योगदान दिया — वे गाँव-गाँव जाकर लोगों को जागरूक करती थीं और सामुदायिक एकजुटता को बनाए रखती थीं। इस संघर्ष ने जनजातीय चेतना को नई दिशा दी।

### 2.3 भील आंदोलन एवं गोंड प्रतिरोध

पश्चिमी और मध्य भारत के भील समुदायों ने ब्रिटिश प्रशासन की नई राजस्व नीतियों, वन नियंत्रण तथा पारंपरिक अधिकारों के हनन के विरुद्ध संगठित होकर विरोध किया। यह आंदोलन केवल आर्थिक हितों तक सीमित नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक स्वायत्तता की रक्षा का भी माध्यम था। इसी प्रकार गोंड, खोंड, कोया और नागा समुदायों ने भी स्थानीय स्तर पर प्रतिरोध आंदोलनों का नेतृत्व किया। इन संघर्षों का मूल उद्देश्य अपनी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक स्वायत्तता और प्राकृतिक संसाधनों पर पारंपरिक अधिकारों की रक्षा करना था।

## 3. स्वतंत्रता पश्चात जनजातीय आंदोलन एवं महिला भागीदारी

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में जनजातीय आंदोलनों का स्वरूप औपनिवेशिक शासन के विरोध से बदलकर अधिकारों, संसाधनों और पहचान की रक्षा के संघर्ष के रूप में विकसित हुआ। यद्यपि संविधान ने जनजातीय समुदायों को विशेष संरक्षण

और विभिन्न अधिकार प्रदान किए, फिर भी भूमि अधिग्रहण, खनन परियोजनाओं, बड़े बांधों, औद्योगीकरण, वन कानूनों तथा विकास योजनाओं के कारण अनेक जनजातीय समुदायों को विस्थापन और आजीविका संकट का सामना करना पड़ा।

इस काल में आदिवासी महिलाओं की भागीदारी विशेष रूप से बढ़ी। उन्होंने संगठन निर्माण, जनजागरण, धरना-प्रदर्शन और नेतृत्व की भूमिकाओं में सक्रिय योगदान दिया। महिलाओं ने जल, जंगल और जमीन से जुड़े मुद्दों को सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण और सामुदायिक अधिकारों के व्यापक विमर्श से जोड़ा। झारखंड आंदोलन, बोडो आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन तथा वनाधिकार से जुड़े संघर्ष इस दौर के प्रमुख उदाहरण हैं।

### **3.1 वनाधिकार एवं जल-जंगल-जमीन आंदोलन**

वनाधिकार एवं जल-जंगल-जमीन आंदोलन भारत के जनजातीय समुदायों द्वारा अपने पारंपरिक संसाधनों, आजीविका और सांस्कृतिक अस्तित्व की रक्षा के लिए संचालित महत्वपूर्ण संघर्षों का प्रतिनिधित्व करता है। जनजातीय समाज का जीवन सदियों से वन, भूमि और जल स्रोतों पर आधारित रहा है, किंतु औपनिवेशिक काल से लेकर स्वतंत्रता पश्चात विकास परियोजनाओं, खनन, औद्योगीकरण, बांध निर्माण तथा कठोर वन कानूनों के कारण इन संसाधनों पर उनका नियंत्रण कमजोर हुआ।

इन आंदोलनों में आदिवासी महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, क्योंकि वे प्रत्यक्ष रूप से वन संसाधनों पर निर्भर रहती हैं। महिलाओं ने जनजागरण, संगठन निर्माण, धरना-प्रदर्शन और सामुदायिक नेतृत्व के माध्यम से संघर्षों को मजबूत बनाया। वनाधिकार अधिनियम, 2006 जैसे कानूनी प्रावधानों के लिए भी जनजातीय आंदोलनों ने महत्वपूर्ण आधार तैयार किया।

### **3.2 नर्मदा बचाओ आंदोलन में भूमिका**

नर्मदा बचाओ आंदोलन भारत के प्रमुख पर्यावरणीय और विस्थापन विरोधी आंदोलनों में से एक है, जिसमें आदिवासी महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बड़े बांधों के निर्माण से प्रभावित होने वाले जनजातीय समुदायों के बीच महिलाओं ने लोगों को संगठित करने, जागरूकता फैलाने और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने का कार्य किया। उन्होंने धरना-प्रदर्शन, जनसभाओं और शांतिपूर्ण प्रतिरोध के माध्यम से विस्थापन, पुनर्वास और आजीविका से जुड़े मुद्दों को प्रमुखता से उठाया। आदिवासी महिलाओं ने यह स्पष्ट किया कि विकास परियोजनाएँ तभी सार्थक हैं जब वे स्थानीय समुदायों के अधिकारों और हितों का सम्मान करें। उनके योगदान ने आंदोलन को व्यापक जनसमर्थन प्रदान किया और यह संदेश दिया कि पर्यावरणीय न्याय और सामाजिक न्याय एक-दूसरे से अभिन्न हैं।

### **3.3 खनन विरोधी आंदोलन**

खनन परियोजनाओं के कारण वन क्षेत्रों के विनाश, भूमि अधिग्रहण और विस्थापन की समस्याओं के विरुद्ध आदिवासी महिलाओं ने सक्रिय रूप से भागीदारी की है। अनेक क्षेत्रों में खनन गतिविधियों ने प्राकृतिक संसाधनों को प्रभावित किया, जिससे आदिवासी समुदायों की आजीविका और सांस्कृतिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। महिलाओं ने स्थानीय संगठनों और जनआंदोलनों के माध्यम से खनन परियोजनाओं का विरोध किया तथा पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभावों को उजागर किया। ग्राम सभाओं, विरोध प्रदर्शनों और जनसंपर्क अभियानों के माध्यम से उन्होंने सामुदायिक अधिकारों की रक्षा की मांग उठाई।

#### **4. महिला नेतृत्व एवं सहभागिता के प्रमुख आयाम**

भारतीय जनजातीय आंदोलनों में महिला नेतृत्व एवं सहभागिता के अनेक महत्वपूर्ण आयाम देखने को मिलते हैं, जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों तक विस्तृत हैं। आदिवासी महिलाओं ने केवल आंदोलनकारी की भूमिका नहीं निभाई, बल्कि नेतृत्वकर्ता, संगठक, प्रेरक और जनजागरणकर्ता के रूप में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

##### **4.1 सामाजिक न्याय आंदोलनों में सहभागिता**

आदिवासी महिलाओं ने सामाजिक न्याय आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी निभाते हुए समानता, सम्मान और अधिकारों की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने भूमि अधिकार, वनाधिकार, विस्थापन, श्रम शोषण तथा सामाजिक भेदभाव जैसे मुद्दों पर संघर्ष किया है। विभिन्न जनआंदोलनों में उनकी उपस्थिति ने वंचित समुदायों की समस्याओं को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने में सहायता की। उनकी सहभागिता ने सामाजिक न्याय आंदोलनों को अधिक व्यापक, समावेशी और जनकेंद्रित बनाया।

##### **4.2 शिक्षा एवं जागरूकता में योगदान**

शिक्षा एवं जागरूकता आंदोलनों में आदिवासी महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन और सशक्तिकरण का प्रभावी माध्यम मानते हुए समुदायों में जागरूकता फैलाने का कार्य किया। अनेक क्षेत्रों में महिलाओं ने बालिका शिक्षा, वयस्क साक्षरता, स्वास्थ्य जागरूकता और सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए अभियान चलाए। उन्होंने स्थानीय संगठनों, स्वयं सहायता समूहों और सामाजिक मंचों के माध्यम से शिक्षा के महत्व को जन-जन तक पहुंचाया।

##### **4.3 महिला अधिकार एवं लैंगिक समानता**

महिला अधिकार आंदोलनों में आदिवासी महिलाओं ने लैंगिक समानता, सम्मान और अधिकारों की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, भेदभाव, श्रम शोषण और सामाजिक असमानताओं के खिलाफ आवाज उठाई। विभिन्न आंदोलनों और संगठनों के माध्यम से उन्होंने महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक स्वावलंबन और राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा देने का प्रयास किया। आदिवासी महिलाओं ने यह भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि विकास और अधिकारों से संबंधित नीतियों में महिलाओं की आवश्यकताओं को उचित स्थान मिले।

##### **4.4 पर्यावरण संरक्षण एवं संसाधन प्रबंधन**

आदिवासी महिलाएँ पर्यावरण संरक्षण एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन की पारंपरिक संरक्षक मानी जाती हैं। उनका दैनिक जीवन वन, जल स्रोतों और कृषि आधारित गतिविधियों से जुड़ा होता है, जिससे उन्हें स्थानीय पारिस्थितिकी का गहन ज्ञान प्राप्त होता है। उन्होंने वनों की रक्षा, जल संरक्षण, जैव विविधता के संवर्धन तथा प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका पारंपरिक ज्ञान और सक्रिय सहभागिता पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ सामुदायिक आजीविका और संसाधनों की दीर्घकालिक सुरक्षा सुनिश्चित करने में सहायक सिद्ध हुई है।

#### **5. आदिवासी महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया**

आदिवासी महिला सशक्तिकरण एवं आंदोलन भारतीय जनजातीय समाज में सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता, सामुदायिक अधिकारों और आत्मनिर्भरता की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया के रूप में विकसित हुए हैं। परंपरागत रूप से आदिवासी

महिलाएँ परिवार, कृषि, वन संसाधन प्रबंधन और सामुदायिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं, किंतु लंबे समय तक उनके योगदान को पर्याप्त मान्यता नहीं मिली।

शिक्षा के विस्तार, सामाजिक जागरूकता, स्व-सहायता समूहों, महिला संगठनों तथा जनजातीय आंदोलनों के प्रभाव से उनकी स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। आदिवासी महिलाओं ने जल, जंगल और जमीन की रक्षा, वनाधिकारों की प्राप्ति, विस्थापन के विरोध, पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक शोषण के विरुद्ध विभिन्न आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी निभाई है। इन आंदोलनों ने महिलाओं को नेतृत्व, निर्णय-निर्माण और संगठनात्मक क्षमता विकसित करने का अवसर प्रदान किया।

सशक्तिकरण की इस प्रक्रिया ने उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उनकी भागीदारी को बढ़ावा दिया। इसके साथ ही उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका और सांस्कृतिक संरक्षण जैसे मुद्दों को भी आंदोलन का हिस्सा बनाया। इस प्रकार आदिवासी महिला सशक्तिकरण केवल महिलाओं की स्थिति में सुधार का माध्यम नहीं है, बल्कि जनजातीय समाज के समग्र विकास, लोकतांत्रिक सहभागिता और सामाजिक परिवर्तन की आधारशिला भी है।

## **6. वैचारिक विश्लेषण: विभिन्न दृष्टिकोण**

आदिवासी महिला आंदोलनों का वैचारिक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि ये आंदोलन केवल लैंगिक समानता या महिला अधिकारों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक अस्मिता, सामुदायिक स्वायत्तता, पर्यावरण संरक्षण और संसाधनों पर अधिकार जैसे व्यापक मुद्दों से जुड़े हुए हैं। मुख्यधारा के महिला आंदोलनों की तुलना में आदिवासी महिला आंदोलनों की वैचारिक संरचना अधिक सामुदायिक और प्रकृति-केंद्रित मानी जाती है।

### **6.1 नारीवादी दृष्टिकोण**

आदिवासी महिला आंदोलनों का नारीवादी दृष्टिकोण महिलाओं की समानता, गरिमा, अधिकारों और सामाजिक न्याय की स्थापना पर केंद्रित है। यह दृष्टिकोण आदिवासी महिलाओं के उन अनुभवों को सामने लाता है जो उन्हें लैंगिक भेदभाव, आर्थिक शोषण और सामाजिक उपेक्षा के कारण प्राप्त होते हैं। हालांकि आदिवासी समाज में महिलाओं की स्थिति कई मामलों में अपेक्षाकृत बेहतर मानी जाती है, फिर भी वे निर्णय-निर्माण, संसाधनों पर नियंत्रण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसी चुनौतियों का सामना करती हैं।

आदिवासी नारीवाद मुख्यधारा के नारीवाद से भिन्न है क्योंकि यह महिलाओं के अधिकारों को समुदाय, संस्कृति, प्रकृति और सामूहिक अस्तित्व से जोड़कर देखता है। यह दृष्टिकोण महिलाओं के सशक्तिकरण के साथ-साथ सामुदायिक अधिकारों और सामाजिक समानता पर भी बल देता है।

### **6.2 उपनिवेशोत्तर दृष्टिकोण**

उपनिवेशोत्तर दृष्टिकोण आदिवासी महिला आंदोलनों को औपनिवेशिक शासन और उसके दीर्घकालिक प्रभावों के संदर्भ में समझने का प्रयास करता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार औपनिवेशिक नीतियों ने जनजातीय समुदायों की भूमि, संसाधनों, संस्कृति और पारंपरिक शासन प्रणालियों को गहरा नुकसान पहुंचाया। आदिवासी महिलाओं ने इन प्रभावों का प्रतिरोध करते हुए अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष किया।

स्वतंत्रता के बाद भी कई विकास नीतियाँ औपनिवेशिक सोच से प्रभावित रहीं, जिसके कारण विस्थापन और संसाधनों के दोहन की समस्याएँ बनी रहीं। उपनिवेशोत्तर विमर्श आदिवासी महिलाओं को केवल पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि परिवर्तन और प्रतिरोध की सक्रिय वाहक के रूप में प्रस्तुत करता है।

### 6.3 सबाल्टर्न विमर्श

सबाल्टर्न विमर्श समाज के उन वर्गों की आवाज़ को महत्व देता है जो मुख्यधारा के इतिहास और सत्ता संरचनाओं में हाशिए पर रहे हैं। आदिवासी महिलाएँ इस दृष्टि से सबाल्टर्न समूह का महत्वपूर्ण हिस्सा मानी जाती हैं। उनके अनुभव, संघर्ष और योगदान लंबे समय तक औपचारिक इतिहास और सामाजिक विमर्शों में पर्याप्त रूप से दर्ज नहीं किए गए।

सबाल्टर्न दृष्टिकोण आदिवासी महिलाओं के जीवन, प्रतिरोध और नेतृत्व को केंद्र में रखकर उनके दृष्टिकोण से इतिहास और समाज को समझने का प्रयास करता है। यह विमर्श दर्शाता है कि आदिवासी महिलाएँ केवल शोषण की शिकार नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक परिवर्तन, सामुदायिक संगठन और अधिकारों की रक्षा में सक्रिय भूमिका निभाने वाली सशक्त एजेंट भी हैं।

### 6.4 जनजातीय अस्मिता एवं प्रतिरोध का विमर्श

जनजातीय अस्मिता एवं प्रतिरोध का विमर्श आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक पहचान, परंपराओं, जीवन-पद्धति और प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकारों की रक्षा से जुड़ा हुआ है। आदिवासी महिलाएँ जल, जंगल और जमीन की रक्षा को केवल आर्थिक प्रश्न नहीं मानतीं, बल्कि इसे अपनी सांस्कृतिक अस्मिता और सामुदायिक अस्तित्व से जोड़कर देखती हैं। विभिन्न जनजातीय आंदोलनों में महिलाओं ने विस्थापन, वन विनाश और संसाधनों के दोहन के विरुद्ध संघर्ष करते हुए प्रतिरोध की मजबूत परंपरा विकसित की है।

### 7. जनजातीय अस्मिता के संरक्षण में महिलाओं की भूमिका

जनजातीय अस्मिता केवल सांस्कृतिक पहचान तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें पारंपरिक ज्ञान, जीवन-पद्धति, भाषा, रीति-रिवाज, सामुदायिक मूल्य तथा जल, जंगल और जमीन से जुड़ा गहरा संबंध भी शामिल है। आधुनिक विकास परियोजनाओं, खनन गतिविधियों, वन संसाधनों के दोहन, विस्थापन और वैश्वीकरण के प्रभावों ने जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक एवं सामाजिक संरचना को चुनौती दी है।

#### 7.1 सांस्कृतिक विरासत एवं भाषा का संरक्षण

आदिवासी महिलाओं ने जनजातीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी पारंपरिक ज्ञान, रीति-रिवाजों, लोककथाओं, धार्मिक मान्यताओं, उत्सवों और सामाजिक मूल्यों का हस्तांतरण करती रही हैं। विभिन्न जनजातीय आंदोलनों के माध्यम से महिलाओं ने सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने तथा बाहरी प्रभावों से उत्पन्न सांस्कृतिक क्षरण का प्रतिरोध किया है।

भाषा और लोक परंपराएँ जनजातीय अस्मिता के प्रमुख आधार हैं। आधुनिकता, शहरीकरण और वैश्वीकरण के प्रभावों के कारण अनेक जनजातीय भाषाएँ और परंपराएँ विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही हैं। ऐसी स्थिति में महिलाओं ने सांस्कृतिक आंदोलनों, शैक्षिक प्रयासों और सामुदायिक गतिविधियों के माध्यम से इनकी रक्षा का कार्य किया है। वे बच्चों और युवाओं को मातृभाषा, लोकगीत, लोककथाएँ, पारंपरिक ज्ञान और सांस्कृतिक मूल्यों से परिचित कराती हैं।

#### 7.2 सामुदायिक पहचान का सुदृढ़ीकरण

सामुदायिक पहचान के सुदृढ़ीकरण में आदिवासी महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। वे परिवार और समुदाय के बीच सेतु का कार्य करते हुए सामाजिक एकता, सामूहिक मूल्यों और पारंपरिक जीवन-पद्धति को बनाए रखने में योगदान देती हैं। विभिन्न जनजातीय आंदोलनों में उनकी सक्रिय भागीदारी ने समुदायों को अपने अधिकारों, संसाधनों और सांस्कृतिक पहचान

के प्रति जागरूक बनाया है। इससे जनजातीय समुदायों को बाहरी चुनौतियों का सामना करने और अपनी विशिष्ट पहचान को सुरक्षित रखने की शक्ति मिली है।

### 8. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भारतीय जनजातीय आंदोलनों में आदिवासी महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण, बहुआयामी और परिवर्तनकारी रही है। औपनिवेशिक काल के संथाल हूल और उलगुलान से लेकर स्वतंत्रता पश्चात के वनाधिकार आंदोलन और नर्मदा बचाओ आंदोलन तक — आदिवासी महिलाएँ सदैव इन संघर्षों की अग्रणी शक्ति रही हैं। वैचारिक दृष्टि से ये आंदोलन नारीवादी, उपनिवेशोत्तर और सबाल्टर्न विमर्शों के मेल से निर्मित एक अनोखा वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत करते हैं। आदिवासी नारीवाद, मुख्यधारा के नारीवाद से इस अर्थ में भिन्न है कि यह व्यक्तिगत अधिकारों के साथ-साथ सामुदायिक अधिकारों, पर्यावरणीय न्याय और सांस्कृतिक अस्मिता को भी उतनी ही प्रमुखता देता है।

इन आंदोलनों ने आदिवासी महिलाओं में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और अधिकार चेतना का विकास किया है। उन्होंने न केवल संसाधनों और अधिकारों की रक्षा की है, बल्कि पारंपरिक ज्ञान, सांस्कृतिक विरासत और सामुदायिक पहचान के संरक्षण में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। उनकी सक्रियता ने सामाजिक आंदोलनों को अधिक समावेशी, लोकतांत्रिक और जनोन्मुख बनाया है।

अंततः यह कहना उचित होगा कि आदिवासी महिला आंदोलन एक वैकल्पिक विकास दृष्टि प्रस्तुत करते हैं, जिसमें प्रकृति, समुदाय और मानव अधिकारों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। यह दृष्टि न केवल जनजातीय समुदायों के लिए, बल्कि समग्र भारतीय समाज के लिए भी एक प्रेरणादायक आदर्श प्रस्तुत करती है।

### संदर्भ सूची

1. गुहा, रंजीत (1999). एलीमेंटरी आस्पेक्ट्स ऑफ पेजेंट इनसर्जेसी इन कोलोनियल इंडिया. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. चटर्जी, पार्था (1993). द नेशन एंड इट्स फ्रैगमेंट्स. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
3. मजूमदार, डी. एन. (1958). ट्राइब्स एंड क्रॉपर्स ऑफ इंडिया. लखनऊ: यूनिवर्सल पब्लिशर्स।
4. नंदी, आशीष (2001). एन एंबिगुअस जर्नी टू द सिटी. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. रॉय बर्मन, बी. के. (1994). ट्राइबल पॉलिटिक्स इन इंडिया. नई दिल्ली: मनोहर पब्लिशर्स।
6. सिंह, के. एस. (1985). ट्राइबल सोसाइटी इन इंडिया. नई दिल्ली: मनोहर पब्लिशर्स।
7. शाह, गणेश (2004). सोशल मूवमेंट्स इन इंडिया. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स।
8. विश्वनाथन, शिव (2005). ए कार्निवल फॉर साइंस. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. पाटकर, मेधा (1995). स्ट्रगल फॉर पार्टिसिपेटरी डेमोक्रेसी. नई दिल्ली: पीपल्स यूनियन।
10. मिश्रा, सौदामिनी (2016). ट्राइबल वुमेन एंड फॉरेस्ट राइट्स. भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
11. वनाधिकार अधिनियम (2006). अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम। भारत सरकार।
12. झा, जगदीश कुमार (2013). भारत में आदिवासी आंदोलन: एक ऐतिहासिक विवेचन. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।